शोध: आरंभिक परिचय

सम्पादन: हृदयकांत दीवान, रजनी द्विवेदी एवं गिरीश शर्मा अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी और रावत पब्लिकेशन, 2024

शशि शुक्ला*, निधि गुलाटी

पुस्तक की पहली छाप

शोध को हम एक जिज्ञासु और तार्किक प्रक्रिया की तरह जानते हैं, और यह पुस्तक इसी विषय पर है। ऐसा पुस्तक के शीर्षक से ही पकड़ में आ जाता है। पुस्तक की यह पहली छाप, हिंदी में शोध पर लेखन के अभाव को सामने लाती है। पहली ही नज़र में यह अहसास हुआ कि यह कमी केवल भाषा तक सीमित नहीं है, बल्कि शोध के पूरे दृष्टिकोण में एक तरह की चुप्पी भी मौजूद रही है। हालांकि, यह चुप्पी कुछ छुपी नहीं है, ना ही शिक्षा के क्षेत्र में शोधकर्ताओं से ना ही अकादमिक दावेदारों से, पर इस चुप्पी को हम अकादमिक हलकों में अकसर नज़रअंदाज़ कर देते हैं। यह किताब इस चुप्पी को तोड़ने का पहला कदम है।

व्यक्तिगत रूप से हमें लेखकों की यह पहल आकर्षक लगी। लेखकों ने भरसक प्रयास किया है कि शोध की जटिल और घुमावदार प्रक्रिया को कैसे परिपेक्ष्य अनुकूल एक समझ आने वाला स्वरुप दिया जा सके। कोशिश की गयी है कि जटिलताओं को सहज और सुलझे रूप में प्रस्तुत किया जाए। आमतौर पर, शोध पर लिखी पुस्तकें तकनीकी भाषा और क्लिष्ट शैली में उलझ जाती हैं, और शोध के प्रति रुचि जगाने की बजाय उस के प्रति उलझन और डर बढ़ा देती हैं। इस संदर्भ में, दीवान, द्विवेदी और शर्मा द्वारा सम्पादित यह पुस्तक इस डर को कम करेगी और इससे जूझने की क्षमता को बढ़ाएगी। ऐसा इसलिए, क्यूँकि इसकी भाषा और प्रस्तुति सरल होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी है। साथ ही, हमें यह यक़ीन है कि यह शोधकर्ताओं को सरल भाषा में शोध के पहलुओं को समझने में अत्यंत मददगार साबित होगी। साफ़ तौर पर समझ आता है कि इस पुस्तक को उन शोधकर्ताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है जो अभी शोध की बारिकियाँ सीख रहें हैं, या शोध के शुरुआती दौर में हैं। ख़ासकर वे भी, जो अपना शोध फील्ड में रहकर शिक्षा से जुड़े मसलों पर करना चाहते हैं। किताब की भाषा और व्याख्या सरल है, लेकिन मसले और उदाहरण पैने हैं, जिससे केवल किताब को ही पढ़ने समझने में आसानी नहीं होगी, बल्कि फ़ील्ड की प्रखर समझ बनाने में काफ़ी मदद मिलेगी। नौसिखिए शोधकर्ताओं को शुरुआती मार्गदर्शन मिलेगा, और साथ ही, उनका अपने काम में विश्वास बढ़ेगा। हिंदी में पढ़ने वाला, शोध करने वाला अपने को दूसरे दर्जे का महसूस नहीं करेगा। इस पुस्तक को पढ़ते हुए हमें बार-बार यह एहसास हुआ कि शोध करने की प्रक्रिया भाषा की सीमा में बंधी नहीं होनी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव रहने वाले भी इस पुस्तक से शोध के विषय में नए सिरे से सोच पाएँगे।

पुस्तक में बारह अध्याय हैं, जो मिलकर शोध की पूरी प्रक्रिया को सहज और क्रमबद्ध तरीके से सामने रखते हैं। शोध क्या है, उसकी बुनियाद में ज्ञान कैसे रचा बसा है, शोध प्रश्न क्या हैं, इन्हें कैसे पूछें, डाटा कैसे संग्रहित करें, उसका विश्लेषण कैसे करें और शोध प्रपत्र कैसे लिखें - इन विषयों को व्यवस्थित रूप से कवर किया गया है। हमारे लिए शोध के इस सफ़र की सम्पूर्णता महत्वपूर्ण रही। अध्याय 5 से 9, अलग अलग शोध विधाओं जैसे गणनात्मक शोध, क्रियान्वयन शोध, गुणात्मक

शोध, ऐतिहासिक शोध, और केस अध्ययन की विधियों, उपयोग और शोध प्रक्रियाओं की चर्चा करते है। शोध कैसे करना है, विषय का चुनाव कैसे होगा, और कौन से प्रश्न पूछे जाने चाहिए, इन पहलुओं पर जितना ज़ोर दिया गया है, उतनी ही रोशनी किताब के आख़िरी अध्यायों में शोध के प्रखर लेखन और उसके महत्व पर डाली गयी है। आख़िरी हिस्से कोपढ़कर लगा कि शोध करना जितना ज़रूरी है उतना ही ज़रूरी है उसे सटीक और महत्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना। हमें यह सिलसिलेवार संतुलित लगा।

यह कह सकते हैं कि लेखकों ने शोध से जुड़े हर पहलू को बहुत बारीक़ी से समझाने की कोशिश की है। खासतौर पर जिस तरह वे शोध की जटिलता को उपयुक्त उदाहरणों और संदर्भों के साथ सरलता से प्रस्तुत करते हैं, वह काफ़ी खूबसूरत है। पुस्तक के अध्याय हृदय कांत दीवान, रजनी द्विवेदी, गिरीश शर्मा, डी.एन. दानी, ए.बी.फाटक और विप्लव सिंह ने लिखे हैं।

पुस्तक का पहला अध्याय चार मुख्य विचारों पर केंद्रित है - शोध का स्वरूप, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया और उसकी जाँच, शोध प्रश्नों का महत्व और शोध से जुड़ी युक्तियाँ व नैतिकता। ज्ञान की प्रकृति क्या है, वह कैसे बनता है, किस आधार पर हम किसी ज्ञान या जानकारी को सच मानते हैं, और इसकी परख कैसे होती है- यह अध्याय इन बुनियादी सवालों पर चर्चा करता है। शोध का उद्देश्य है मौजूदा ज्ञान की समीक्षा, परीक्षण और नए दृष्टिकोणों का विकास। समाज और संस्कृति के इतिहास में पहले से मौजूद ज्ञान पर आधारित नए अवलोकन और अनुभव शोध की प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं। इस प्रक्रिया से गुज़रकर पुराने ज्ञान का परिष्करण, नए दृष्टिकोणों का विकास, और मौजूदा ज्ञान की पुनः जाँच की जाती है। समाज और संस्कृति के बदलते संदर्भ में यह अध्याय शोध को देखने का एक गहरा नज़रिया पेश करता है।

अध्याय में शोध प्रश्नों पर ध्यान दिया गया है - शोध प्रश्न कहाँ से उत्पन्न होते हैं, कैसे बनते हैं, उन्हें कैसे बेहतर बनाया जा सकता है। इस भाग को पढ़कर हमें लगा कि शोध में सिर्फ़ उत्तर खोजना ज़रूरी नहीं है, बल्कि सही सवालों की पहचान करना भी ज़रूरी है। साथ ही, अध्याय में शोध के चरणों, डाटा संग्रह, विश्लेषण और निष्कर्ष तक पहुँचने की प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया गया है। ख़ास बात यह है कि इसमें शोधकर्ता की व्यक्तिपरकता और भूमिका, उसकी सोच, सम्भावित पूर्वाग्रहों और नैतिक ज़िम्मेदारियों पर भी बात की गयी है।

शिक्षकों और शोधकर्ताओं के लिए यह अध्याय विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि यह शोध प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों, विशेषकर ज्ञान मीमांसा के बारे में है। यह हमें सोचने के लिए प्रेरित करता है कि जो ज्ञान हम रखते हैं, क्या पहले इस पर विचार किया गया है? हम शोध के दौरान - अन्य विचारशील व्यक्तियों से कैसे संवाद कर सकते हैं, चाहे वे हमारे समकालीन हों या नहीं। यह संप्रेषण अहम है, क्यूँकि इससे शोध से ज्ञान का सिलसिला क़ायम रहता है।

फाटक और दानी द्वारा लिखित दूसरा अध्याय शोधकर्ता की जिम्मेदारियों और व्याकुलता का समीकरण करता है। एक तरफ हमारी यह समझ बनती है की शोध एक निजी सफ़र है और शोधकर्ता अपनी समझ और रूचि के अनुसार शोध के पहलुओं को प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी ओर किताब के पाठकों को शोधकर्ता की नैतिक ज़िम्मेदारियों से परिचित कराने की लेखकों ने पुरज़ोर कोशिश की है। अन्य विषयों, ख़ासकर विज्ञान और बाकी के तकनीकी विषयों की तुलना में समाजशास्त्र में शोधकर्ताओं के दायित्व, कुछ अधिक हैं परंतु इसके बारे में अभी काफ़ी कम लिखा गया है। लेखकों ने हमें सचेत करते हुए एक ज़रूरी बात लिखी है – शोध करते हुए शोधकर्ता को न सिर्फ़ स्वयं के साथ ईमानदार रहना है बल्कि उनको अपनी विषय वस्तु, अन्य शोधकर्ता साथी, शोध के प्रतिभागियों के प्रति अटूट निष्कपटता रखनी होगी और तब ही शोध का पूरा चित्र सामने आएगा।

इस बारे में सचेत रहना ज़रूरी है कि शोध करते हुए हम प्रतिभागियों की निजी ज़िंदगी में घुसपैठिया न बन जाएँ, बल्कि इस भागीदारी में अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी समझें, इस बात को

दूसरे अध्याय में पुरज़ोर दोहराया गया है। शोध प्रश्न की संरचना कैसे की जाए, यह इस अध्याय की अहम बात है। लेखक कहते हैं कि शोध प्रश्न लिखना शोध का सबसे ज़रूरी, मुश्किल और बड़ा काम है, इन्हें अगर जल्दबाज़ी में लिखा जाए, या शोधकर्ता के मनमुताबिक बनाया जाए, तो कभी भी समाज के लिए वे अच्छा शोध नहीं साबित हो सकते। शोध प्रश्न का चुनाव और निरूपण, शोध के क्षेत्र में मौजूदा शोध -सिद्धांतो को पढ़कर और क्षेत्र की ज़रूरत को समझकर करना होगा, तभी कोई भी नया शोध पूरी तौर पर समाज के लिए हितकारी होगा। लेखकों का सुझाव है कि शोधकर्ता शोध को सिर्फ़ एक डिग्री ना समझकर, उसे एक – सामाजिक दायित्व की तरह देखें। वे ऐसे शोध करने के प्रति अग्रगामी हों जो अन्य शोधकर्ताओं के लिए मज़बूत आधार बन पाए।

शोध में न्यादर्श से मतलब पूरी आबादी के बारे में अनुमान लगाने के लिए एक छोटे उपसमूह को चुनने से है। पूरी आबादी का अध्ययन करना अव्यवहारिक, महँगा, और चुनौतीपूर्ण हो सकता है; न्यादर्श चयन की प्रक्रिया शोधकर्ताओं को एक छोटे समूह से डाटा एकत्रित करने का अवसर देती है। न्यादर्श बड़ी आबादी का प्रतिनिधित्व करता है। शोध के अलग अलग प्रकार होते हैं, जिनकी चर्चा की गयी है, और शोध प्रकार के अनुसार, न्यादर्श चयन विधियों का विवरण शामिल किया गया है। लेखकों ने यह स्थापित करने की कोशिश की है कि न्यादर्श का चयन एक सुयोजित तरीके से ही किया जाना चाहिए। न्यादर्श के चयन करने में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि शोध का प्रकार मात्रात्मक है या गुणात्मक। शोधकर्ता को समष्टि की जानकारी होनी चाहिए, तभी वे शोध के लिए अनूकूल न्यादर्श का चयन कर पाएँगे। शोध का हर पहलू दूसरे पहलू से कड़ी दर कड़ी जुड़ा है, इसलिए भी शोध के प्रश्नों की जटिलता को सुलझाने के लिए सही और प्रभावशाली न्यादर्श का चयन करना होगा। किताब का तीसरा अध्याय इस कदर सरलता और बारी की से लिखा गया है, कि शोधकर्ताओं को उचित न्यादर्श का चयन करने में बहुत आसानी होगी। लेखकों द्वारा अनेकों बार यह चर्चा की गयी है कि अगर न्यादर्श के चयन में कमतरी रही तो शोध की गुणवत्ता पर प्रश्न उठ सकते हैं। शोध के मायने तब ही हैं जब एक कौशलपूर्ण विश्लेषण सम्भव हो, और उचित न्यादर्श का अभाव इस प्रक्रिया को सीमित कर देगा। पाठ में शामिल उदाहरण एक वैचारिक स्पष्टता प्रदान करते हैं।

शोध का प्रकार मात्रात्मक है या गुणात्मक, यह न्यादर्श का चयन करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। न्यादर्श चयन की अनेक विधियों का विवरण देते हुए यह उल्लेखित करने का प्रयास किया गया है कि शोधकर्ता को समष्टि की पूर्ण समझ होना मूलभूत है तभी वे शोध के लिए अनुकूल न्यादर्श चयनित कर पाएंगे। चूँकि शोध का हर पहलू एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है, शोध के प्रश्नों पर चर्चा अध्याय पाँच - गणनात्मक शोध में एक केंद्र बिंदु है। इसमें शोधकर्ता गुणों का मापन और विश्लेषण करते हैं। गणनात्मक शोध में ऐसे चर ढूंढ़े जाते हैं जिन्हें मापना मुश्किल पर संभव हो। लेखकों ने चरों को समझाया है और मापने की विधि समझाते हुए लिखा है कि उपकरणों का चयन पूरी तरह से शोध प्रश्नों पर निर्भर करता है। अध्याय में प्रायोगिक और अर्ध:प्रायोगिक शोध का विवरण दिया गया है। दोनो प्रकार के शोध में कुछ चर स्वतंत्र हो सकते हैं और कुछ निर्भर। गणनात्मक शोध अलग अलग तरीक़ों से किया जा सकता है। लेखक साफ़ करते हैं कि यह बात ज़रूरी है कि शोध का तरीक़ा, शोध लक्ष्य और प्रश्न से निर्धारित हो। अध्याय पढ़ते हुए हमें एहसास हुआ कि गणनात्मक शोध के जटिल से जटिल प्रसंग को सरल साधारण भाषा में समझाया जा सकता है। गणनात्मक शोध के दो प्रकारों की चर्चा शामिल है और यह समझने की कोशिश है कि कौन सा तरीक़ा कब सही मापन करेगा। प्रायोगिक शोध का विवरण इतनी सरलता से दिया गया है कि शोधकर्ता के लिए यह समझ पाना काफ़ी आसान होगा कि अपने प्रश्नों के सटीक जवाब तक पहुंचने के लिए सही शोध प्रक्रिया चुनना बहुत ज़रूरी है। इस अध्याय में यह समझाने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक और शैक्षिक शोध के पात्र इंसान हैं, जो परिवर्तनशील है। इसलिए सामाजिक और शैक्षिक अध्ययन के प्रायोगिक शोध में और विज्ञान के प्रायोगिक शोध

में काफ़ी फ़र्क है, और होना भी चाहिए। इस अध्याय की सबसे खूबसूरत बात है कि इसमें- प्रायोगिक शोध के चरणों का विवरण देकर अध्याय में लेखकों ने अर्ध प्रायोगिक शोध को भी समझाया है। अर्ध-प्रायोगिक शोध शिक्षा के क्षेत्र में सामान्यतः प्रयोग होने वाले शोध हैं, इन्हें समझने के लिए उदाहरण भी दिए गए हैं। समापन पंक्ति में दीवान और सिंह पुनः स्थापित करते हैं कि हालांकि प्रयोगात्मक शोध का दावा है कि यह शोध वास्तविक अनुभवों पर आधारित है और विभिन्न चरों के बीच सम्बन्धों को तार्किक ढंग से समझने की प्रक्रिया है, परंतु इस शोध प्रणाली को समाजशास्त्र और शिक्षा में निर्णायक निष्कर्ष के रूप में नहीं देखा जा सकता है। इस अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि एक प्रयोगात्मक शोध कुछ हद तक निर्णायक हो, इसके लिए विषय और परिपेक्ष्य की अनुकूल समझ होना बहुत ज़रूरी है।

दीवान और द्विवेदी द्वारा लिखित अध्याय छह क्रियानुसंधान के मुख्य पहलुओं पर रोशनी डालता है। वास्तव में "क्रियानुसंधान" शिक्षा और शिक्षण की समस्याओं के समाधान खोजने की प्रक्रिया है। शिक्षक, प्रधानाचार्य, प्रशिक्षु शिक्षक या ज़मीनी स्तर पर बच्चों के साथ काम करने वाले अगर अपनी शिक्षण पद्धतियों या व्यवस्था से जुड़ी समस्याओं को हल करने का एक व्यवस्थित प्रयास करते हैं तो "क्रियानुसंधान" उनके लिए उचित शोध की प्रक्रिया है। यह न केवल अनुभवात्मक शोध बल्कि चिंतनशील प्रक्रिया भी है।

इस अध्याय में लेखक ज़ोर देते हैं कि क्रियानुसंधान शोध व्यक्तिगत और स्थानीय दोनों हो सकता है। कुछ उदाहरणों से यह समझ आता है - जैसे कोई शिक्षिका जो अपने कक्षाकक्ष में बच्चों में पढ़ने की आदत को बढ़ावा देना चाहती हों या बच्चों के सीखने के तरीकों को करीबी से समझना चाहती हों, तो वे इस शोध प्रणाली का इस्तेमाल कर सकती हैं। इस प्रणाली में शिक्षा की समस्या को शोध प्रश्न के केंद्र में शुरू से ही देखा जाता है, जैसे, यदि कुछ बच्चे अक्षर या संख्या को उल्टा लिखते हैं, तो इसे करीबी से देखना। इसी तरह से यह सवाल कि क्या समय सारिणी में पुस्तकालय के लिए घंटा होना, बच्चों में पढ़ने की क्षमता को बेहतर करता है? या फिर बच्चों को स्वछंद लेखन के अवसर कैसे दिए जा सकते हैं और इसका क्या असर दिखता है?

इस अध्याय में शोध प्रक्रिया के चरणों पर भी रोशनी डाली गयी है- मूल समस्या की पहचान ⟶ उसके पीछे के कारणों की पहचान और विश्लेषण ⟶ परिकल्पना का निर्माण ⟶ कार्य योजना की निर्मिति ⟶ योजना का क्रियान्वयन ⟶ पूर्ण प्रक्रिया का मूल्यांकन। यह शोध प्रक्रिया ज़मीनी संदर्भ से जुड़ी रहती है। शोध के हर पहलू में शिक्षिका/शोधकर्ता बदलाव कर सकती हैं। जैसे शोध के सवाल, पद्धति, आंकड़े एकत्रित करने का ढंग व आंकड़ों का प्रकार— इनमें से कुछ भी जड़वत नहीं है, या पहले से तय नहीं है, यह बार बार बदल सकता है। यह प्रक्रिया काफ़ी लचीलापन लिए है, और यही इसकी सुंदरता है।

साथ ही, लेखक कहते हैं कि " क्रियानुसंधानघटनाक्रम का विवरण नहीं है परन्तु मनन की एक प्रक्रिया है..." (पृष्ठ 85)। शोध शुरू होने से पहले और शोध के दौरान शिक्षिका कक्षा की, या बच्चों की गतिविधियों को रिकॉर्ड करती हैं, क्या किया गया, क्या हुआ, क्या देखा, क्या सुना, कुछ बदला; फिर वे समीक्षा करती है कि जो हुआ अथवा नहीं हो पाया उसके क्या कारण हो सकते हैं। फिर अपने तरीकों में सुधार के रास्ते तलाशती है। अपनी योजना दोबारा बना उसे लागू करती हैं, फिर से अवलोकन करती हैं और फिर उन तरीक़ों की प्रभावशीलता का आकलन करती है। काफ़ी सटीक उदाहरण इस अध्याय में शामिल किए गए हैं, जैसे बच्चों का सृजनात्मक लेखन, ख़ासकर कहानी, कविता, या अनुभव लेखन का विकास, पढ़ने की आदत में सुधार लाने के अवसर, या पालकों से बातचीत कर विद्यालयी उपस्थिति को बेहतर करना। इन से स्पष्ट है कि क्रियानुसंधान शिक्षकों को उनकी कक्षा की ज़मीनी हकीकत को समझने और उसमें बदलाव लाने का अवसर देता है।

मूलत: क्रियानुसंधान सामाजिक विज्ञान में होने वाले औपचारिक शोध से अलग है। यह फ़र्क दायरे और संदर्भ, नमूनों, और शोध के उद्देश्यों का है। लेकिन लेखक क्रियानुसंधान को औपचारिक

शोध से कमतर नहीं आंकते हैं, क्यूँकि क्रियानुसंधान शोध की सीमाओं का विस्तारण ही है। यह समस्याओं का समाधान ढूँढने के व्यवस्थित अवसर देता है, ज़मीनी तौर पर बदलाव के लिए काम करता है, ख़ासकर पेडागोजी में और यह अनुभवजन्य है।

शिक्षा में शोध का उद्देश्य समझ बना पाने और बदलाव ला पाने की सम्भावनाओं से करीब से जुड़ा है। ख़ासकर शिक्षा की गुणवत्ता में, और हाशिए पर स्थित बच्चों, परिवारों और समुदायों की ज़िंदगी में बदलाव लाने के उद्देश्य हेतु यह अहम है। बदलाव की शुरुआत मसले को करीब से देखकर उसकी तह तक पहुँचने से जुड़ी है। मान लीजिए ये जानना है कि बच्चों के स्कूल में टिके रहने के या ना टिके रहने के पीछे क्या कारण हैं? कुछ शोध विधियाँ हमें शिक्षकों, बच्चों और पालकों से बातचीत कर समझ बना पाने के मौक़े देती हैं जिससे हम जान पाएँ कि इस मुद्दे को कैसे समझते हैं, उनके क्या अनुभव हैं। लेकिन, एक तरह से हम कह सकते हैं कि यह समझ सतही है। अगर हमें मामले की तह तक पहुँचना हो, यानी जानना हो कि शाला त्यागने के पीछे किस-किस तरह के कारण हैं क्या यह कारण केवल पारिवारिक और आर्थिक है, या फिर इसके पीछे शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दे भी हैं? शाला त्यागने से पूर्व अन्य बच्चों से या शिक्षकों से उनके रिश्ते कैसे थे? स्कूल के संदर्भ में या कक्षाकक्ष में सत्ता क्या रूप लेती है? इसपर समझ बनाने के लिए एथनोग्राफ़ी उपयुक्त तरीका है।

अध्याय सात एथनोग्राफ़ी को बारीक़ी से समझने का प्रयास है, जिसे दीवान और द्विवेदी ने लिखा है। एथनोग्राफ़ी की शुरूआत मानव समूहों के नृशास्त्रीय (एंथ्रोपोलोजिकल) अध्ययन से हुई। नृशास्त्रीय विज्ञान में एथनोग्राफ़ी एक स्थापित गुणात्मक शोध प्रणाली है, किन्तु पिछले कुछ दशकों से शिक्षा में भी इसका इस्तेमाल ज़ोर पकड़ने लगा है। यह विधि शोधकर्ता को किसी संस्था, समूह, या समुदाय के साथ रहकर भीतरी जीवन, व्यवहार, संबंधों और मान्यताओं को समझने का अवसर देती है। मान लीजिए किसी क़स्बे में शोध करनी है। शोधकर्ता उस क़स्बे में आने जाने लगते है, काफ़ी लम्बे समय तक। वे अनुभव कर पाते है और समझ बना पाते हैं कि उस क़स्बे में लोग क्या करते हैं, वे ऐसा क्यों करते हैं। जो फैसले लिए जाते हैं, उन के पीछे के संदर्भ क्या हैं? उस क़स्बे में जीवन कैसा है? यहाँ जाति, जेंडर, या आर्थिक-सामाजिक वर्ग से जुड़ी सत्ता कैसे काम करती है? कौन से विचार दूसरों पर हावी हैं? लोगों के बीच संवाद कैसा है? सत्ता कैसे काम करती है? जो भी सतह पर दिखता है, उन परिस्थितियों व समस्याओं के पीछे के गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों के पैटर्न को समझने में कैसे मदद करता है।

एथनोग्राफी में सबसे पहला कदम शोध उद्देश्य, या प्रारम्भिक सवाल को स्पष्ट करना है। इसके बाद फील्ड और अध्ययन समूह का चयन, और उसमें प्रवेश का चरण आता है। फ़ील्ड में शोधकर्ता का समूह के साथ विश्वास का रिश्ता होना अहम है, यह बनने के बाद ही डाटा संग्रह शुरू किया जाता है। इस शोध प्रणाली में भागीदारी अवलोकन, साक्षात्कार, दस्तावेज़ निरीक्षण, और विशिष्ट घटनाओं के अध्ययन जैसे तरीकों का उपयोग किया जाता है। यह प्रक्रिया निरंतरता लिए हुए है, शोधकर्ता बार बार फील्ड में जाकर अवलोकन करते हैं, साथ ही विश्लेषण भी करते रहते हैं। डाटा को समझने के लिए श्रेणियां बनायी जाती हैं, अंतःक्रियाओं, और विरोधाभासों के बीच संबंध ढूँढा जाता है। अध्याय डाटा की जांच, क्रॉस-वैलिडेशन और रिपोर्ट लेखन का भी विवरण देता है।

अन्य शोध प्रणालियों की तरह यहाँ पुनः स्थापित किया गया है कि शोधकर्ता की व्यक्तिपरकता - उसकी प्रवृत्तियां, दृष्टिकोण और समाज की समझ शोध को प्रभावित करती हैं। ख़ासकर, एथनोग्राफी में यह पहलू काफ़ी मायने रखता है। एथनोग्राफी लोगों के नजरिए से उनकी दुनिया को देखने का प्रयास है। परंतु जितना सरल यह कहना है कि लोगों के साथ रहकर उनको समझना है, उतना ही इस समझ को व्यवस्थित कर, इसकी समीक्षा कर एक –रूपरेखा में संजोना मुश्किल काम है। एथनोग्राफी का डाटा काफ़ी समृद्ध और बहुआयामी होता है। अध्याय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि एथनोग्राफी शोधकर्ता को किसी मसले का गहराई से अध्ययन और उसके कारणों को जानने के अवसर देती है। स्वाभाविकता, संदर्भ से जुड़ी

गहराई, और अनुभव आधारित दृष्टिकोण - यह पहलू इसे एक ताकतवर प्रणाली बनाते हैं।

आँठवे अध्याय में लेखक 'ऐतिहासिक शोध पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि - कैसे इस शोध प्रणाली को शिक्षा में हुए विकास और बदलावों की समझ बनाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य है व्यक्ति और समाज के संदर्भ में हो चुके बदलावों को समझना और उल्लेखित करना। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रणाली का प्रयोग कर -शिक्षा नीतियों में बदलाव, जैसे विकेंद्रीकरण के असर को समझना, आर्थिक बंटन, निजी और सरकारी स्कूलों के बाबत क्या नीतियाँ हैं व उनमें क्या बदलाव हुए हैं; संस्थाओं का इतिहास; शिक्षाशास्त्रियों की जीवनी और उनके विचार; शिक्षा से जुड़ी अवधारणाओं का इतिहास; और समाज और शिक्षा का रिश्ता कैसे बदला है, आदि की समझ बनाई जा सकती है। इस किताब में उदाहरणों का प्रयोग कर हर शोध प्रणाली को जिस कदर सरलता से समझाया है वो सराहनीय है। कुछ उदाहरण जो हमें प्रासंगिक लगे वे हैं — समय के साथ शिक्षक होने के अर्थ में बदलाव समझना, और शिक्षक का समाज, सरकार और प्रशासन से रिश्ता कैसे-कैसे रूप लेता रहा है।अध्याय में इस प्रणाली के स्रोतों पर भी चर्चा की गई है।

ऐतिहासिक शोध में उपयोग किए जाने वाले प्राथमिक स्रोत जैसे कि दस्तावेज - चिट्ठियाँ, डायरी, आत्मकथाएँ, शिलालेख, सरकारी रिपोर्ट आदि हैं। द्वितीयक स्रोत में कई अन्य जैसे कि इतिहास की किताबें या विषय विशेषज्ञ से बातचीत आदि शामिल हैं। अध्याय यह स्पष्ट करता है कि हालाँकि इस शोध प्रणाली में हम इतिहास में झांक कर, उसमें छिपे पैटर्न को उल्लेखित कर उसकी समसामयिक परिस्थितियों, घटनाओं, नीतियों आदि से तुलना करते हैं, लेकिन इस की सीमितता केवल तुलना तक ही है। हम इतिहास को "आज के प्रतीकों व मूल्यों के संदर्भ में नहीं समझ सकते" (पृष्ठ 112), बल्कि सिर्फ इससे तुलना कर पाते हैं, जिससे फिर भी एक बेहतर समझ ज़रूर बन पाती है।

द्विवेदी द्वारा लिखित यह नवाँ अध्याय अत्यंत सरल शोध विधि का रोचक वर्णन है। केस स्टडी एक ऐसा तरीका है जो शोधकर्ता को चयनित विषय पर गहराई से समझ बनाने का पूरा अवसर देता है। यह शोध की गुणात्मक और विवरणात्मक प्रणाली है। किसी विषय पर पैनी समझ बनानी हो तो केस स्टडी सटीक प्रक्रिया है। केस स्टडी का प्रयोग कर विषय के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सभी पहलुओं पर गहराई से अध्ययन कर पाते हैं। वास्तव में यह एक प्रकार से परिस्थिति में शामिल हो कर किसी विषय पर पड़ताल करने का अनुभाविक तरीक़ा है। शोधकर्ता को पहले केस स्टडी डिज़ाइन करना होता है और उसके बाद ही वह व्यवस्थित रूप से अवलोकन आदि कर आंकड़ों को एकत्रित करते हैं। केस स्टडी के चरणों की चर्चा शामिल की गयी है और यह साफ किया गया है कि मात्र विजिट करने या कई बार जा कर भी देखने से उपयुक्त डाटा नहीं मिलता, इसके लिए नियोजित व सघन अवलोकन व अंतःक्रिया चाहिए। लेखिका ने इस बात पर भी ध्यान दिया है कि डाटा एकत्रित करने के बाद उसका आंकलन कैसे हो और एक अच्छी रिपोर्ट कैसे लिखी जाए। विवरणात्मक होते हुए भी केस स्टडी की कुछ सीमाएं हैं जैसे, शोधकर्ता अवलोकन अपने आप करते हैं जिस वज़ह से व्यक्तिनिष्ठता होने की सम्भावना बढ़ जाती है। पाठकों को सचेत करते हुए लेखिका स्पष्ट करती हैं कि इसलिए ज़रूरी है कि शोधकर्ता को सोच समझ कर एक से अधिक जानकारी के स्रोतों ढूँढने चाहिए।

अब तक जितने अध्याय हमने पढ़े, उनमें यह स्थापित किया जा चुका है कि शोध एक व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके हर चरण को सोच समझकर तय किया जाता है शोधकर्ता को सचेत रहकर यह तय करना होता है कि वह किस प्रकार के डाटा इकट्ठा करेंगे, कैसे करेंगे और किन युक्तियों का उपयोग करेंगे आदि। यह सब शोध की शुरुआती चरण में ही निश्चित किए गये शोध के उद्देश्य पर आधारित होंगे।

दसवें अध्याय में दानी और दीवान 5 युक्तियों का विवरण करते है। पहली युक्ति है, अवलोकन जिसमें लेखक ने अवलोकन

के अलग अलग पहलुओं की चर्चा शामिल की है, जैसे कि अवलोकन क्या है, क्यूँ किया जाता है, उसके अनायास और सायास प्रकार, पहले की तैयारी और प्रक्रिया, उसके अलग-अलग चरण, अवलोकन करते समय कितना नियंत्रण सही है, अवलोकनकर्ता की भूमिका क्या हो सकती है आदि? अध्याय में आगे साक्षात्कार के बारे में बात की गयी है, किन स्थितियों में यह उपयुक्त है, इसके क्या- क्या प्रकार हैं, साक्षात्कार के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें क्या हैं आदि। इस पर भी विचार किया है कि शोधकर्ता किस तरह चर्चा को सहज बना सकते हैं। एक अनसोचा पहलू यह भी शामिल किया गया है कि उत्तरदाता को स्वतंत्रता कैसे दी जा सकती है ताकि उसकी बात खुल के सामने आ सके। अध्याय में इसके आगे फोकस ग्रुप चर्चा, सर्वेक्षण और समाजमिति और इन युक्तियों के विविध पहलुओं पर विस्तार से चर्चा शामिल की गयी है। इन सभी युक्तियों के अर्थ, ज़रूरत, सावधानियों, शोधकर्ताओं में उत्तरदाताओं के प्रति अपने दायित्वों के बारे में सचेतता कैसे क़ायम की जाए - इनका उल्लेख लेखकों द्वारा किया गया है। सभी युक्तियों की अपनी ख़ास विशेषताएँ, फ़ायदे और दायरे हैं, जिन पर यह अध्याय विचार करता है।

द्विवेदी और शर्मा द्वारा लिखे गए ग्यारहवे अध्याय में शोध उपकरणों की चर्चा की गई है। ये वे संसाधन और तकनीकें हैं जिनका उपयोग कर शोधकर्ता सुव्यवस्थित तरीके से डाटा एकत्रित कर उसका विश्लेषण कर पाते हैं और साथ ही उसकी व्याख्या कर पाते हैं। शोध विषय के अनुसार उपकरण अलग अलग होते हैं। दरअसल डाटा की गुणवत्ता उपकरणों की वैधता, व्यवहारिकता वस्तुनिष्ठता और भरोसे पर ही जमती है। डाटा कैसा है, कैसे एकत्रित किया गया है, इस पर शोध के परिणाम टिके हैं। यह उपकरण अनुसंधान प्रक्रिया की सटीकता, दक्षता और विश्वसनीयता को बेहतर बनाते हैं, उसे परिष्कृत करते हैं। इससे शोधकर्ता प्रभावी ढंग से काम कर पाने में सक्षम होते हैं।

उपकरणों के गुणों की चर्चा करने के बाद, शिक्षा और सामाजिक अध्ययन में अभिवृति मापन के उपकरण और उनसे प्राप्त डाटा का विश्लेषण कैसे किया जाये इस पर चर्चा की गयी है। अध्याय के अगले हिस्से में प्रश्नावली पर चर्चा की गयी है- उसे परिभाषित किया गया है और यह बताया गया है कि प्रश्नावली का प्रयोग कब और क्यूँ किया जाता है। प्रश्नावली आंकड़े एकत्रित करने के लिए एक बहुत ही अहम विधि हो सकती है लेकिन ऐसा तभी मुमकिन होगा जब इसकी संरचना सोच समझ कर की गयी हो। ख़ास तौर पर, एक बड़े समूह से संरचित तरीके से डाटा एकत्र करने के लिए यह एक कामगार विधि है।प्रश्नावली का प्रयोग शोधकर्ताओं द्वारा गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तरह की जानकारी एकत्रित करने के लिए किया जाता है। लेखकों ने अध्याय की समापन पंक्तियाँ में लिखा है कि शोध में प्रश्नावली महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक व्यवहारिक, बहुमुखी और स्केलेबल उपकरण है जो विश्वसनीय डाटा प्रदान कर सकती है।

पुस्तक के आखिरी अध्याय की शुरुआत दीवान एक महत्वपूर्ण सवाल से करते हैं कि हम शोध पत्र क्यों लिखते हैं। इस प्रश्न का जवाब तो हम जानते ही हैं परंतु लेखक ही स्पष्ट करते हैं कि यह प्रश्न बार बार पूछा जाना जरूरी है ताकि एक अच्छा शोध पत्र गठित मीमांसा से होकर ही निकले। शोध पत्र लेखन एक उद्देश्यशील प्रक्रिया है जिससे ज्ञान को आगे बढ़ाया जा सकता है, निष्कर्षों का संप्रेषण किया जा सकता है और साथ ही शोध कौशल का प्रदर्शन किया जा सकता है। मूलतः इस लेखन से ही शोधकर्ता अन्य शोधकर्ताओं या आम दुनिया से बात करते हैं।

विषय में योगदान देने और अकादमिक बातचीत में भाग लेने के लिए यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधन के रूप में काम करता है। एक उपयोगी और बेहतरीन शोध पत्र लिख पाना कोई सरल प्रक्रिया नहीं है, परंतु यह कहना भी गलत ना होगा कि शोध के चरणों में यह सबसे आखिरी और अहम है।

शोधकर्ताओं को सुझाव देते हुए दीवान लिखते हैं कि एक अच्छा शोध पत्र शुद्ध प्रश्नों के उत्तर पर केंद्रित रहकर लिखा जाना चाहिये। लेखन के समय स्पष्टता सबसे जरूरी है और

दीवान सलाह देते हैं कि लिखते समय शब्द जाल में उलझाते हुए और घुमावदार पेचीदा भाषा ना लिखी जाए। अपनी बात को स्पष्ट संक्षिप्त तरीके से कहा जाए। अच्छी लिखायी वही है जो पाठकों को सोचने का मौका दे, आलोचना करने का मौका दे। शोध पत्र बेहतर तभी हो सकता है जब शोधकर्ता विषय की व्यापक समझ प्रदर्शित करने के लिए मौजूदा शोध का विश्लेषण और आलोचना करते हुए अपना लेख लिखें।

समापन सूत्र

शोध पर लिखी बहुत सी किताबें शोध में नैतिकता का उल्लेख तो करती है पर, दीवान और उनके साथियों की यह पुस्तक जिस कदर शोधकर्ता को नैतिकता के स्वरुप को समझने के निश्चयात्मक रूप से लिखी गयी है वो सर्वोत्कृष्ट है। अगर एक वाक्य में सारांशित करें तो आसान लेकिन मुखर स्वर में लेखकों ने शोध के प्रति शोधकर्ताओं के नैतिक और व्यवहारिक दायित्व को पुन: स्थापित कर दिया है।

यह कहना गलत न होगा की यह पुस्तक शोध के क्षेत्र में एक अनोखा प्रकरण होगी। सभी शोध विधियों के अध्यायों में कुछ कड़ियाँ हैं। इन में से पहली कड़ी है, ज्ञानमीमांसा की, जिसे पहले अध्याय में काफ़ी खंगाला गया। जिस मसले का हम अध्ययन करने जा रहे हैं उसके मीमांसात्मक अध्ययन के लिए क्या वो पद्धति सही है या नहीं। वह विधि शोध प्रश्न से और ज्ञान के स्वरूप से कैसी जुड़ती है। पूर्व ज्ञान के साथ जुड़कर नया ज्ञान, नयी समझ कैसे बन रही है, ज्ञानमीमांसा का यह धागा सभी अध्यायों को सिलसिलेवार पिरोता है।

दूसरे, शिक्षा और समाज के बीच का रिश्ता इस अध्याय में शोध की प्रक्रियाओं और विधियों का साझा आधार है। शिक्षा केवल पाठ्यक्रम या कक्षाकक्ष की अंत: क्रियाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक तौर पर समाज की संरचनाओं, मूल्यों और ताकतों या सत्ता से जुड़ी है। शिक्षा को समझने और उस में बदलाव लाने के लिए सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भ को महत्वपूर्ण मानना जरूरी है।

पहले अध्याय में लेखकों ने इस बात पर ज़ोर दिया, कि शोध केवल अकादमिक नहीं बल्कि सामाजिक सरोकारों से जुड़ा होना चाहिए। समाज में व्याप्त असमानताओं और सत्ता-संबंधों को सामने लाने और सकारात्मक समझ से उन्हें बदलने का काम शोध का है, और किताब शुरू से अंत तक इस उद्देश्य पर बार बार ठहरती है। सामाजिक न्याय से जुड़े प्रश्न, मसले और समस्यायें इस किताब की सबसे अहम कड़ी है। पहले अध्याय से ही, हम समझने लगते हैं कि शिक्षा में सत्ता-संबंध, वर्चस्व और असमानतायें कैसे सामने आती हैं, या परोक्ष रहकर कुछ वर्गों के लिए रुकावट पैदा करती हैं। हर अध्याय अलग अलग पहलुओं से इसी नज़रिए को गहरा करने की कोशिश करता है, कि शिक्षा में शोध किस तरह सामाजिक पुनरुत्पादन पर सवाल उठा, उसे बेहतर समझ सकता है और उसे चुनौती दे, बाधित कर सकता है।

कुछ अन्य कड़ियाँ भी हैं, जैसे - शोधकर्ता शोध के लिए प्रासंगिक दायरे कैसे चुने और उन्हें कैसे परिसीमित करे, किस पहलू पर ध्यान केंद्रित करे और यह पहचान ले कि कौन-से प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, ताकि शोध स्पष्ट, संगठित और सार्थक हो सके। आप शोध प्रणाली की कोई पुस्तक उठाएँगे, तो उसमें या तो गणनात्मक शोध के दायरे में मात्रात्मक संकलन और आंकड़ों के साथ सांख्यकीय विश्लेषण कैसे-कैसे करें का विवरण होगा या फिर गुणात्मक शोध में डाटा संकलन और उसके विश्लेषण के बारे में होगा। यह पुस्तक ख़ास है क्यूँकि इसमें दोनों ही प्रकार के शोध को बराबर अहमियत दी गयी है, और दोनों से जुड़ी युक्तियां और विश्लेषण हैं।

इस किताब में सायटेशन या रेफ़्रेन्स मौजूद नहीं हैं। हर केंद्र बिंदु को किसी और ने पहले कैसे लिखा, और कहाँ लिखा यह नहीं जोड़ा गया है। एक अकादमिक को यह कमी खलेगी, क्यूँकि सामान्यतः शोध पर पुस्तकों में पहले लिखे लेखों का हवाला शामिल किया ही जाता रहा है। लेकिन यही कमी इस किताब को रीडएबल बनाती है। जब अलग अलग लेखों या शोधों की सूची रेफ़्रेन्स या फ़ुट्नोट में लिखी रहती है, तो

पढ़ने का सिलसिलेवार क्रम टूटता है, और ध्यान बँट जाता है। हालाँकि उस विषय पर और शोध को ढूँढकर पढ़ पाना आसान हो जाता है। हमारी समझ में लेखकों ने यहाँ पढ़ने की सहजता को प्राथमिकता दे, अपना चुनाव सोच समझ कर किया है।

शोध के विषय पर हिंदी भाषा में लिखी गयी किताबों का हमेशा से एक अभाव रहा है; दीवान, द्विवेदी और शर्मा द्वारा संपादित (व काफी हद तक लिखित) यह किताब इस कमी की पूर्ति करने की राह में एक सकारात्मक प्रयास है। यह पुस्तक कुल 206 पन्नो की है और इसकी क़ीमत 350 रुपए है। इस पुस्तक की लेखन शैली से यह पता चलता है की शोध प्रक्रिया का चुनाव इतना जटिल नहीं जितना शोध पर लिखी गयी अन्य पुस्तकें स्थापित करती रही है। नौसिखिए और तज़ुर्बेकार, दोनो ही शोधकर्ताओं की इस किताब से दोस्ती करीबी रहेगी।